

अध्याय ३९



बाबा का संस्कृत ज्ञान : गीता के एक श्लोक की बाबा द्वारा टीका, समाधि मन्दिर का निर्माण।

इस अध्याय में बाबा ने गीता के एक श्लोक का अर्थ समझाया है। कुछ लोगों की ऐसी धारणा थी कि बाबा को संस्कृत भाषा का ज्ञान न था और नानासाहेब की भी उनके प्रति ऐसी ही धारणा थी। इसका खंडन हेमाडपंत ने मूल मराठी ग्रंथ के ५०वें अध्याय में किया है। दोनों अध्यायों का विषय एक-सा होने के कारण वे यहाँ सम्मिलित रूप में दिए जाते हैं।

प्रस्तावना

शिरडी के सौभाग्य का वर्णन कौन कर सकता है? श्री द्वारकामाई भी धन्य है, जहाँ श्री साई ने आकर निवास किया और वहीं समाधिस्थ हुए।

शिरडी के नर-नारी भी धन्य हैं, जिन्हें साई ने पधारकर अनुगृहीत किया और जिनके प्रेमवश ही वे दूर से चलकर वहाँ आए। शिरडी तो पहले एक छोटा सा ग्राम था, परन्तु श्री साई के सम्पर्क से विशेष महत्त्व पाकर वह एक तीर्थ-क्षेत्र में परिणत हो गया।

शिरडी की नारियाँ भी परम भाग्यशालिनी हैं, जिनका उनपर असीम और अडिग विश्वास प्रशंसा के परे है। आठों प्रहर काम काज करते, पीसते, अनाज निकालते, गृहकार्य करते हुये वे उनकी कीर्ति का गुणगान किया करती थीं। उनके प्रेम की उपमा ही क्या हो सकती है? वे अत्यन्त मधुर गायन करती थीं, जिससे गायकों और श्रोतागण के मन को परम शांति मिलती थी।

बाबा द्वारा टीका

किसी को स्वप्न में भी ज्ञात न था कि बाबा संस्कृत के भी ज्ञाता

हैं। एक दिन नानासाहेब चाँदोरकर को गीता के एक श्लोक का अर्थ समझाकर उन्होंने लोगों को विस्मय में डाल दिया। इसका संक्षिप्त वर्णन सेवानिवृत्त मामलतदार श्री बी.व्ही. देव ने मराठी साईलीला पत्रिका के भाग ४, (स्फुट विषय पृष्ठ ५६३) में छपवाया है। इसका संक्षिप्त विवरण Sai Baba's Charters and Sayings पुस्तक के ६१ वें पृष्ठ पर और The Wonderous Saint Sai Baba के पृष्ठ ३६ पर भी छपा है। ये दोनों पुस्तकें श्री बी.व्ही. नरसिंह स्वामी द्वारा रचित हैं। श्री बी.व्ही. देव ने अंग्रेजी में तारीख २७-९-१९३६ को एक व्यक्तव्य दिया है, जो कि नरसिंह स्वामी द्वारा रचित पुस्तक के “भक्तों के अनुभव, भाग-३” में छपा गया है। श्री देव को इस विषय की प्रथम सूचना नानासाहेब चाँदोरकर से प्राप्त हुई थी। इसलिए उनका कथन नीचे उद्धृत किया जाता है। नानासाहेब चाँदोरकर वेदांत के विद्वान् विद्यार्थियों में से एक थे। उन्होंने अनेक टीकाओं के साथ गीता का अध्ययन भी किया था तथा उन्हें अपने इस ज्ञान का अहंकार भी था। उनका मत था कि बाबा संस्कृत भाषा से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इसीलिये बाबा ने उनके इस भ्रम का निवारण करने का विचार किया। यह उस समय की बात है, जब भक्तगण अल्प संख्या में आते थे। बाबा भक्तों से एकान्त में देर तक वार्त्तालाप किया करते थे। नानासाहेब इस समय बाबा की चरण-सेवा कर रहे थे और अस्पष्ट शब्दों में कुछ गुनगुना रहे थे।

बाबा - नाना, तुम धीरे-धीरे क्या कह रहे हो?

नाना - मैं गीता के एक श्लोक का पाठ कर रहा हूँ।

बाबा - कौन-सा श्लोक है वह?

नाना - यह भगवद्गीता का एक श्लोक है।

बाबा - जरा उसे उच्च स्वर में कहो।

तब नाना भगवद्गीता के चौथे अध्याय का ३४ वाँ श्लोक कहने लगे :-

“तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥”

बाबा - नाना, क्या तुम्हें इसका अर्थ विदित है?

नाना - जी, महाराज।

बाबा - यदि विदित है तो मुझे भी सुनाओ।

नाना - इसका अर्थ है - तत्त्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुषों को भली प्रकार दंडवत् कर, सेवा और निष्कपट भाव से किये गए प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को जान। वे ज्ञानी, जिन्हें सद्वस्तु (ब्रह्म) की प्राप्ति हो चुकी है, तुझे ज्ञान का उपदेश देंगे।

बाबा - नाना, मैं इस प्रकार का संकुल भावार्थ नहीं चाहता। मुझे तो प्रत्येक शब्द और उसका भाषांतरित उच्चारण करते हुए व्याकरणसम्मत अर्थ समझाओ।

अब नाना एक-एक शब्द का अर्थ समझाने लगे

बाबा - नाना, क्या केवल साष्टांग नमस्कार करना ही पर्याप्त है?

नाना - नमस्कार करने के अतिरिक्त मैं “प्रणिपात” का कोई दूसरा अर्थ नहीं जानता।

बाबा - ‘परिप्रश्न’ का क्या अर्थ है?

नाना - प्रश्न पूछना।

बाबा - ‘प्रश्न’ का क्या अर्थ है?

नाना - वही (प्रश्न पूछना)।

बाबा - यदि ‘परिप्रश्न’ और ‘प्रश्न’ दोनों का अर्थ एक ही है, तो फिर व्यास ने ‘परि’ उपसर्ग का प्रयोग क्यों किया? क्या व्यास की बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी?

नाना - मुझे तो ‘परिप्रश्न’ का अन्य अर्थ विदित नहीं है।

बाबा - ‘सेवा?’ यहाँ किस प्रकार की सेवा से आशय है?

नाना - वही जो हम लोग सदा आपकी करते रहते हैं।

बाबा - क्या यह ‘सेवा’ पर्याप्त है?

नाना - और इससे अधिक ‘सेवा’ का कोई विशिष्ट अर्थ मुझे ज्ञात नहीं है।

बाबा - दूसरी पंक्ति के “उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं” में क्या तुम ‘ज्ञानं’ शब्द के स्थान पर दूसरे शब्द का प्रयोग कर इसका अर्थ कह सकते हो?

नाना - जी हाँ।

बाबा - कौन सा शब्द?

नाना - अज्ञानम्।

बाबा - 'ज्ञानं' के बजाय उस शब्द को जोड़ कर क्या इस श्लोक का अर्थ निकलता है?

नाना - जी नहीं, शांकर भाष्य में इस प्रकार की कोई व्याख्या नहीं है।

बाबा - नहीं है, तो क्या हुआ? यदि 'अज्ञान' शब्द के प्रयोग से कोई उत्तम अर्थ निकल सकता है तो उसमें क्या आपत्ति है?

नाना - मैं नहीं जानता कि उसमें "अज्ञान" शब्द का किस प्रकार प्रयोग होगा।

बाबा - कृष्ण ने अर्जुन को क्यों ज्ञानियों या तत्त्वदर्शियों को नमस्कार करने, उनसे प्रश्न पूछने और सेवा करने का उपदेश किया था? क्या स्वयं कृष्ण तत्त्वदर्शी नहीं थे? वस्तुतः स्वयं ज्ञान स्वरूप?

नाना - जी हाँ, वे ज्ञानावतार थे। परन्तु मुझे यह समझ में नहीं आता कि उन्होंने अर्जुन से अन्य ज्ञानियों के लिये क्यों कहा?

बाबा - क्या तुम्हारी समझ में नहीं आया?

अब नाना हतप्रभ हो गए। उनका घमंड चूर हो चुका था। तब बाबा स्वयं इस प्रकार अर्थ समझाने लगे।

(१) ज्ञानियों को केवल साष्टांग नमस्कार करना पर्याप्त नहीं है। हमें सद्गुरु के प्रति अनन्य भाव से शरणागत होना चाहिए।

(२) केवल प्रश्न पूछना पर्याप्त नहीं। किसी कुप्रवृत्ति या पाखंड, या वाक्य-जाल में फँसाने, या कोई त्रुटि निकालने की भावना से प्रेरित होकर प्रश्न नहीं करना चाहिए, वरन् प्रश्न उत्सुकतापूर्वक केवल मोक्ष या आध्यात्मिक पथ पर उन्नति प्राप्त करने की भावना से ही प्रेरित होकर करना चाहिए।

(३) मैं तो सेवा करने या अस्वीकार करने में पूर्ण स्वतंत्र हूँ, जो ऐसी भावना से कार्य करता है, वह सेवा नहीं कही जा सकती। उसे अनुभव करना चाहिए कि मुझे अपने शरीर पर कोई अधिकार नहीं है। इस शरीर पर तो गुरु का ही अधिकार है और केवल उनकी सेवा के निमित्त ही वह विद्यमान है।

इस प्रकार आचरण करने से तुम्हें सद्गुरु द्वारा ज्ञान की प्राप्ति हो जाएगी, जैसा कि पूर्व श्लोक में बताया गया है।

नाना को यह समझ में नहीं आ सका कि गुरु किस प्रकार 'अज्ञान' की शिक्षा देते हैं।

बाबा - ज्ञान का उपदेश कैसा है? अर्थात् भविष्य में प्राप्त होने वाली आत्मानुभूति की शिक्षा। अज्ञान का नाश करना ज्ञान है। (गीता के श्लोक १८-६६^१ पर ज्ञानेश्वरी भाष्य की ओवी १३९६ में इस प्रकार वर्णन है :- हे अर्जुन! यदि तुम्हारी निद्रा और स्वप्न भंग हो, तब तुम स्वयं हो। वह इसी प्रकार है। गीता के अध्याय ५-१६ के आगे टीका में लिखा है :- क्या ज्ञान में अज्ञान नष्ट करने के अतिरिक्त कोई और भेद भी है?) अंधकार नष्ट करने का अर्थ प्रकाश है। जब हम द्वैत नष्ट करने की चर्चा करते हैं, तो हम अद्वैत की बात करते हैं जब हम अंधकार नष्ट करने की बात करते हैं तो उसका अर्थ है कि प्रकाश की बात करते हैं। यदि हम अद्वैत की स्थिति का अनुभव करना चाहते हैं तो हमें द्वैत की भावना नष्ट करनी चाहिए। यही अद्वैत स्थिति प्राप्त होने का लक्षण है। द्वैत में रहकर अद्वैत की चर्चा कौन कर सकता है? जब तक वैसी स्थिति प्राप्त न हो, तब तक क्या उसका कोई अनुभव कर सकता है?

शिष्य श्री सद्गुरु के समान ही ज्ञान की मूर्ति है? उन दोनों में केवल अवस्था, उच्च अनुभूति, अद्भुत, अलौकिक सत्य, अद्वितीय योग्यता और ऐश्वर्य योग में भिन्नता होती है। सद्गुरु निर्गुण निराकार सच्चिदानंद है। वस्तुतः वे केवल मनुष्य जाति और विश्व के कल्याण के निमित्त स्वेच्छापूर्वक मानव शरीर धारण करते हैं, परन्तु नर-देह धारण करने पर भी उनकी सत्ता की अनंतता में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। उनकी आत्मोपलब्धि, लाभ, दैविक शक्ति और ज्ञान सदा एक-से रहते हैं। शिष्य का भी तो यथार्थ में वही स्वरूप है, परन्तु अनगिनत जन्मों के कारण उसे अज्ञान उत्पन्न हो जाता है और उसी

१. सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ गीता १८॥६६॥

के वशीभूत होकर उसे भ्रम हो जाता है तथा अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप को विस्मृति हो जाती है। गीता का अध्याय ५^१ देखो - “अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।” जैसा कि वहाँ बतलाया गया है, उसे भ्रम हो जाता है कि “मैं” जीव हूँ, एक प्राणी हूँ, दुर्बल और असहाय हूँ। गुरु इस अज्ञानरूपी जड़ को काटकर फेंक देता है और इसीलिए उसे उपदेश करना पड़ता है। ऐसे शिष्य को जो जन्म-जन्मांतरों से यह धारणा करता आया है कि, “मैं तो जीव, दुर्बल और असहाय हूँ,” गुरु सैकड़ों जन्मों तक ऐसी शिक्षा देते हैं कि तुम ही ईश्वर हो, सर्वशक्तिमान् और समर्थ हो, तब कहीं जाकर उसे किंचित्मात्र भास होता है कि यथार्थ में “मैं ही ईश्वर हूँ।” सतत भ्रम में रहने के कारण ही उसे ऐसा भास होता है कि, “मैं शरीर हूँ, एक जीव हूँ, तथा ईश्वर और यह विश्व मुझ से एक भिन्न वस्तु है।” यह तो केवल एक भ्रम मात्र है, जो अनेक जन्म धारण करने के कारण उत्पन्न हो गया है। कर्मानुसार प्रत्येक प्राणी को सुख दुःख की प्राप्ति होती है। इस भ्रम, इस त्रुटि और इस अज्ञान की जड़ को नष्ट करने के लिये हमें स्वयं अपने से प्रश्न करना चाहिए कि यह अज्ञान कैसे पैदा हो गया? वह अज्ञान कहाँ है? और इस त्रुटि का दिग्दर्शन कराने को ही उपदेश कहते हैं।

अज्ञान के नीचे लिखे उदाहरण हैं :-

- (१) मैं एक जीव (प्राणी) हूँ।
- (२) शरीर ही आत्मा है। (मैं शरीर हूँ)
- (३) ईश्वर, विश्व और जीव भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं।
- (४) मैं ईश्वर नहीं हूँ।
- (५) शरीर आत्मा नहीं है - इसका बोध न होना।
- (६) इसका ज्ञान न होना कि ईश्वर, विश्व और जीव एक ही हैं।

जब तक इन त्रुटियों का उसे दिग्दर्शन नहीं कराया जाता, तब तक

१. नादते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥ गीता ५-१५ ॥

शिष्य को यह कभी अनुभव नहीं हो सकता कि ईश्वर, जीव और शरीर क्या हैं; उनमें क्या अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है तथा वे परस्पर भिन्न हैं या अभिन्न हैं अथवा एक ही हैं? इस प्रकार की शिक्षा देना और भ्रम को दूर करना ही 'अज्ञान' का ज्ञानोपदेश कहलाता है। अब प्रश्न यह है कि जीव जो स्वयं ज्ञान-मूर्ति है, उसे ज्ञान की क्या आवश्यकता है? उपदेश का हेतु तो केवल त्रुटि को उसकी दृष्टि में लाकर अज्ञान को नष्ट करना है। बाबा ने आगे कहा -

(१) 'प्रणिपात' का अर्थ है 'शरणागति'।

(२) शरणागत होना चाहिए तन, मन, धन से (अर्थात् अनन्य भाव से)।

(३) कृष्ण अन्य ज्ञानियों की ओर क्यों संकेत करते हैं? सद्भक्त के लिए तो प्रत्येक तत्त्व वासुदेव है। (भगवद्गीता^१ अ. ७-१९ अर्थात् कोई भी गुरु अपने भक्त के लिए कृष्ण है) और गुरु शिष्य को वासुदेव मानता है और कृष्ण इन दोनों को अपने प्राण और आत्मा। (भगवद्गीता^२ अ. ७-१८ पर ज्ञानदेव की टीका) चूँकि श्रीकृष्ण को विदित था कि ऐसे अनेक भक्त और गुरु विद्यमान हैं, इसलिये उनका महत्त्व बढ़ाने के लिए ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन से ऐसा उल्लेख किया।

समाधि-मन्दिर का निर्माण

बाबा जो कुछ करना चाहते थे, उसकी चर्चा वे कभी नहीं करते थे, प्रत्युत् आसपास ऐसा वातावरण और परिस्थिति का निर्माण कर देते थे कि लोगों को बाद में उनका निश्चित परिणाम देखकर बड़ा अचम्भा होता था। समाधि-मन्दिर इस विषय का उदाहरण है। नागपुर के प्रसिद्ध लक्षाधिपति श्रीमान बापूसाहेब बूटी सकुटुम्ब शिरडी में रहते थे। एक बार उन्हें विचार आया कि शिरडी में स्वयं का एक वाड़ा होना चाहिए। कुछ समय के पश्चात् जब वे दीक्षित वाड़े में निद्रा ले रहे थे तो उन्हें

१. बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ गीता ७॥ १९॥

२. उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्

आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥ गीता ७॥ १८॥

एक स्वप्न हुआ। बाबा ने स्वप्न में आकर उनसे कहा कि, “तुम अपना एक वाड़ा और एक मन्दिर बनवाओ।” शामा भी वहीं शयन कर रहा था और उसने भी ठीक वैसा ही स्वप्न देखा। बापूसाहेब जब उठे तो उन्होंने शामा को रुदन करते देखकर उससे रोने का कारण पूछा। तब शामा कहने लगा -

“अभी-अभी मुझे एक स्वप्न आया था कि बाबा मेरे बिल्कुल समीप आए और स्पष्ट शब्दों में कहने लगे कि, “मन्दिर के साथ वाड़ा बनवाओ। मैं समस्त भक्तों की इच्छाएँ पूर्ण करूँगा।” बाबा के मधुर और प्रेमपूर्ण शब्द सुनकर मेरा प्रेम उमड़ पड़ा तथा गला रूँध गया और मेरी आँखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी इसलिए मैं जोर से रोने लगा।” बापूसाहेब बूटी को आश्चर्य हुआ कि दोनों के स्वप्न एक से ही हैं। धनाढ्य तो वे थे ही, उन्होंने वाड़ा निर्माण करने का निश्चय कर लिया और शामा के साथ बैठकर एक नक्शा खींचा। काकासाहेब दीक्षित ने भी उसे स्वीकृत किया और जब नक्शा बाबा के समक्ष प्रस्तुत किया गया तो उन्होंने भी तुरंत स्वीकृति दे दी। तब निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया गया और शामा की देखरेख में नीचे मंजिल, तहखाना और कुआँ बनकर तैयार हो गए। बाबा भी लेंडी को आते-जाते समय परामर्श दे दिया करते थे। आगे यह कार्य बापूसाहेब जोग को सौंप दिया गया। जब कार्य इस तरह चल ही रहा था, उसी समय बापूसाहेब जोग को एक विचार आया कि कुछ खुला स्थान भी अवश्य होना चाहिए, जिसके बीचोंबीच ‘मुरलीधर’ की मूर्ति की भी स्थापना की जाए। उन्होंने अपना विचार शामा को प्रकट किया तथा बाबा से अनुमति प्राप्त करने को कहा। जब बाबा वाड़े के पास से जा रहे थे, तभी शामा ने बाबा से प्रश्न कर दिया। शामा का प्रश्न सुनकर बाबा ने स्वीकृति देते हुए कहा कि, “जब मन्दिर का कार्य पूर्ण हो जाएगा, तब मैं स्वयं वहाँ निवास करूँगा,” और वाड़े की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा, “जब वाड़ा पूर्ण बन जाएगा, तब हम सब लोग उसका उपभोग करेंगे। वहीं रहेंगे, घूमेंगे, फिरेंगे और एक दूसरे को हृदय से लगायेंगे तथा आनन्दपूर्वक विचरेंगे।” जब शामा ने बाबा से पूछा कि, क्या यह मूर्ति के मध्य-कक्ष की नींव के कार्य आरम्भ का शुभ मुहूर्त

है? तब उन्होंने स्वीकारात्मक उत्तर दे दिया। तभी शामा ने एक नारियल लाकर फोड़ा और कार्य प्रारम्भ कर दिया। ठीक समय में सब कार्य पूर्ण हो गया और 'मुरलीधर' की एक सुन्दर मूर्ति बनवाने का प्रबन्ध किया गया। अभी उसका निर्माण कार्य प्रारम्भ भी न हो पाया था कि एक नवीन घटना घटित हो गई। बाबा की स्थिति चिंताजनक हो गई और ऐसा दिखने लगा कि वे अब देह त्याग देंगे। बापूसाहेब बहुत उदास और निराश से हो गए। उन्होंने सोचा कि यदि बाबा चले गए तो वाड़ा उनके पवित्र चरण-स्पर्श से वंचित रह जाएगा और मेरा सब (लगभग एक लाख) रुपया व्यर्थ हो जाएगा, परन्तु अंतिम समय बाबा के श्री मुख से निकले हुए वचनों ने ("मुझे वाड़े में ही रखना") केवल बूटी साहेब को ही सान्त्वना नहीं पहुँचाई, वरन् अन्य लोगों को भी शांति प्रदान की। कुछ समय के पश्चात् बाबा का पवित्र शरीर मुरलीधर की मूर्ति के स्थान पर रख दिया गया। बाबा स्वयं 'मुरलीधर' बन गए और वाड़ा 'साईबाबा का समाधि मंदिर'।

उनकी अगाध लीलाओं की थाह कोई न पा सका। श्री बापूसाहेब बूटी धन्य हैं, जिनके वाड़े में बाबा का दिव्य और पवित्र पार्थिव शरीर अब विश्राम कर रहा है।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥